यूनिट 2 : लागत का सिद्धान्त (Unit 2 : Theory of Cost)

सीखने के परिणाम (Learning Outcomes)

इस यूनिट के अन्त में, आप निम्न में समर्थ होंगे :

- लागतों का अर्थ तथा विभिन्न प्रकारों का वर्णन।
- लागत कार्य की परिभाषा तथा अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लागत कार्य के बीच अन्तर को समझना।
- उत्पादन कार्य तथा लागत कार्य के बीच शृंखलाओं का वर्णन।
- पैमाने की बचतों तथा गैर-बचतों का वर्णन तथा उनकी विद्यमानता हेतु कारण जानना।

गत यूनिट में, हमने भौतिक मात्राओं में इनपुट्स तथा आउटपुट के बीच सम्बन्ध को समझा है। लेकिन जैसा कि हम जानते हैं कि व्यावसायिक निर्णय सामान्यत: उत्पादन लागत पर आधारित हैं अर्थात इनपुट्स तथा आउटपुट के मौद्रिक मूल्य पर विचार किया जाता है। लागत विश्लेषण के अन्तर्गत लागतों के व्यवहार का एक अथवा एक से अधिक उत्पादन सिद्धान्तों से सम्बन्ध, जैसे उत्पादन का आकार, क्रियाकलापों का पैमाना, उत्पादन के साधनों की कीमतें, और अन्य सार्थक आर्थिक चरों इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, लागत विश्लेषण उत्पादन सम्बन्धों के वित्तीय पक्षों से जुड़ा होता है बजाय भौतिक पक्षों से जिनका भी उत्पादन विश्लेषण के अन्तर्गत विचार किया जाता है। कोई भी लागत विश्लेषण ऐसा होना चाहिए जिसमें विभिन्न लागत धाारणाओं के विषय में स्पष्ट वर्णन हो।

2.0 लागत संकल्पनाएँ (COST CONCEPTS)

लेखांकन लागतें तथा आर्थिक लागतें (Accounting Costs and Economic Costs)–एक साहसी को उत्पादन के घटकों के लिए मूल्य चुकाना होता है जिनको वह उत्पादन के लिए लगाता है। इस प्रकार वह लगाये गये श्रमिकों को मजदूरी चुकाता है, कच्चे माल के लिए मूल्य चुकाता है, ऊर्जा तथा प्रयुक्त पॉवर के लिए मूल्य देता है, किराये पर ली गई भवन सम्पत्ति के लिए किराया देता है तथा व्यवसाय करने के लिए ऋण ली गई राशि पर ब्याज देता है। ये सभी उसकी उत्पादन लागत में शामिल किये जाते हैं तथा 'लेखांकन लागतों' के रूप में जाने जाते हैं। लेखांकन लागत उन लागतों से सम्बन्ध रखती है जो फर्म के उपक्रमी द्वारा रोकड़ भुगतानों का समावेश करते हैं। अत: लेखांकन लागत बहिर्मुखी लागतें हैं तथा विभिन्न उत्पादकीय घटकों के सप्लायर्स को साहसी द्वारा किये गये भुगतानों तथा सभी व्ययों का समावेश करते हैं। लेखांकन लागतें फर्म द्वारा पहले से ही किये गये व्यय हैं। लेखाकार इनको फर्म के वित्तीय विवरणों में रिकॉर्ड करते हैं।

लेकिन सामान्यत: ऐसा होता है कि एक उद्यमी अपने उत्पादक व्यवसाय में कुछ निश्चित मौद्रिक पूँजी का निवेश भी करता है। यदि उद्यमी द्वारा जो मौद्रिक पूँजी अपने व्यवसाय में लगायी गयी है, वह किसी अन्य स्थान पर लगायी जाती, तो उसको कुछ निश्चित ब्याज अथवा लाभांश की प्राप्ति होती। इसके अलावा उद्यमी अपने स्वयं के उत्पादन कार्य में कुछ समय भी लगाता है और अपनी प्रबन्धकीय एवं उद्यमी विषयक योग्यता का अपने-व्यापार के लिये उपयोग करता है। यदि उसने अपना व्यवसाय नहीं चलाया होता तो वह अपनी सेवाओं को अन्य स्थानों पर मुद्रा कमाने की दृष्टि से बिक्री कर देता। लेखांकन लागतें इन लागतों को सम्मिलित नहीं करतीं। ये लागतें आर्थिक लागतों के एक भाग का रूप प्राप्त करती हैं। इस प्रकार आर्थिक लागतों को सम्मिलित किया जाता है। (1) उद्यमी द्वारा अपने व्यवसाय में जो मौद्रिक विनियोग किया गया है, उस पर सामान्य प्रतिफल (2) मजदूरी अथवा वेतन जो उद्यमी को नहीं दिया गया किन्तु वह उत्पन्न करता यदि उसकी सेवायें अन्यत्र बिक्री की जातीं। इसी प्रकार अन्य सभी साधनों का मौद्रिक प्रतिफल जिन साधनों को उद्यमी ने अपने व्यवसाय में अपनी ओर से लगाया है, उस प्रतिफल को भी आर्थिक लागतों का एक भाग स्वीकार किया जाता है। आर्थिक लागतें इस प्रकार

© The Institute of Chartered Accountants of India

की लेखांकन लागतों को स्वीकार करती हैं और इनके अलावा उस मौद्रिक राशि को भी स्वीकार करती हैं जो उद्यमकर्त्ता उपार्जित करता यदि उसने अपनी मुद्रा का विनियोग तथा अपनी सेवायें तथा अन्य साधन किसी दूसरे श्रेष्ठ वैकल्पिक कार्य में किया होता। लेखांकन लागतों को स्पष्ट या व्यक्त लागतों का नाम भी दिया जाता है तथा उन साधनों को जिन्हें उद्यमी अपने व्यवसाय में लगाता है, जिनका स्वामी वह स्वयं होता है, उन लागतों को अस्पष्ट या अव्यक्त लागतों के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार आर्थिक लागतों में लेखांकन लागतें तथा अव्यक्त लागतें भी सम्मिलित होती हैं। अत: आर्थिक लागतें व्यवसायी के लिए निर्णय लेते समय उपयोगी होती है।

आर्थिक लागत की विचारधारा महत्वपूर्ण होती है क्योंकि एक उपक्रमी को अपनी आर्थिक लागत को शामिल करना चाहिये यदि वह सामान्य लाभ कमाना चाहता है। सामान्य लाभ अन्तर्मुखी लागतों का भाग होता है। यदि एक साहसी द्वारा प्राप्त कुल आगम अन्तर्मुखी तथा बाह्य लागतों दोनों को केवल शामिल ही करता है तो उसको शून्य आर्थिक लाभ होता है। अति सामान्य लाभ या धनात्मक आर्थिक लाभ (असामान्य लाभ) इन सामान्य लाभों के ऊपर होता है। दूसरे शब्दों में, एक उपक्रमी को केवल धनात्मक आर्थिक लाभ कमाते हुए कहा जाता है (असामान्य लाभ) जब उसके आगम उसकी बहिर्मुखी लागतों तथा अन्तर्मुखी लागतों के योग से अधिक हो।

मौद्रिक लागतें एवं अवसर लागतें (Outlay Costs and opportunity costs)–मौद्रिक लागतों के अन्तर्गत मजदूरियों, सामग्री, ब्याज इत्यादि पर अपने वाली लागतों पर होने वाला मौद्रिक व्यय सम्मिलित किया जाता है। इसके विपरीत अवसर लागत अवसर के त्याग की लागत पर विचार करती है, इसमें तुलनात्मक विचार किया जाता है। जैसे जो नीति अपनायी अथवा चुनी गयी थी, उसकी तुलना उस नीति से की जाती है जिसकों अस्वीकार कर दिया गया था। उदाहरण के लिए, पूँजी के प्रयोग की अवसर लागत ब्याज होता है जो उसको अगले समान जोखिम वाले क्षेत्र में प्राप्त हो सकता है।

मौद्रिक लागत एवं अवसर लागत में त्याग की प्रकृति के आधार पर अन्तर किया जा सकता है। मौद्रिक लागतों के अन्तर्गत वित्तीय व्यय जो एक समय होते हैं उन्हें लेखा-पुस्तकों में प्रविष्ट कर दिया जाता है। अवसर लागतें त्यागे गये विकल्पों पर विचार करती है, जिनकों लेखा पुस्तकों में नहीं लिखा जाता है।

अवसर लागत की धारणा सामान्यत: बहुत उपयोगी होती है जैसे एक कपड़े की मिल जो अपने काम आने वाले धागे की कताई स्वयं करती है, बुनाई विभाग के लिये धागे की अवसर लागत उस कीमत के बराबर होगी जिस पर धागे को बेचा जा सकता है। इसका बुनाई के क्रियाकलापों की लाभदायकता ज्ञात करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिये।

दीर्घकाल में लागत गणना में भी यह धारणा उपयोगी होती है। उदाहरण के लिए, उच्च शिक्षा की लागत की गणना करते समय शिक्षण शुल्क और पुस्तकों के व्यय के साथ-साथ आय-उपार्जन का त्याग भी सम्मिलित करना चाहिए जो कक्षा लेते समय गया।

प्रत्यक्ष या पहचान योग्य लागतें एवं अप्रत्यक्ष एवं गैर-पहचान योग्य लागतें (Direct or traceable costs and indirect or non-traceable costs)–प्रत्यक्ष लागतें उन्हें कहा जाता है जिनकी पहचान आसानी से हो जाती है और एक विशेष उत्पादन, प्रक्रिया अथवा संयंत्र के स्तर तक पहचानी जा सकती है यहाँ तक कि उपरिव्यय भी एक विभाग के लिए प्रत्यक्ष होता है विनिर्माण लागतें उत्पाद प्रणाली बिक्री क्षेत्र, ग्राहक वर्ण इत्यादि के प्रसंग में भी प्रत्यक्ष होती हैं। हमको लागत गणना का उद्देश्य पता होना चाहिए इससे पूर्व कि हम यह बतायें कि लागत प्रत्यक्ष प्रकार की है अथवा अप्रत्यक्ष प्रकार की है।

अप्रत्यक्ष लागतें आसानी से पहचानी नहीं जातीं और न विशिष्ट वस्तुओं के विषय में उनको देखा अथवा अनुमान किया जा सकता है, यही बात सेवाओं, क्रियाकलापों इत्यादि के विषय में भी पाई जाती है। किन्तु ये लागतें प्रमाणित लेखांकन व्यवहार के अनुसार कार्यों और उत्पादों की लागतों में प्रविष्ट की जाती हैं। इन लागतों का आर्थिक महत्त्व यह है कि यद्यपि ये वस्तु के विषय में प्रत्यक्ष रूप में पहचानी नहीं जा सकतीं, किन्तु उत्पाद से इनका फलनीय सम्बन्ध होता है और ये उत्पादन के साथ कुछ निश्चित ढंग से परिवर्तित होती हैं। ऐसी लागतों के उदाहरण हैं–विद्युत शक्ति, व्यवसाय के संचालन के सामान्य व्यय, अत: ये सभी वस्तुओं के लिए संयुक्त रूप से उपयोगी होती हैं और इसलिये इन्हें सामान्य लागतों के नाम से भी पुकारा जाता है।

वृद्धिगत लागत तथा डूबत लागत (Incremental Costs and Sunk Costs)–सैद्धान्तिक तौर पर, वृद्धिगत लागतें सीमान्त लागत को विचारधारा से सम्बन्धित हैं। वृद्धिगत लागत व्यावसायिक निर्णय के परिणामस्वरूप फर्म द्वारा लगाई गई

© The Institute of Chartered Accountants of India

अतिरिक्त लागत का संदर्भ लेती है। उदाहरण के लिए, वृद्धिगत लागत एक फर्म द्वारा लगाई जानी पड़ेंगी जब यह अपनी उत्पाद श्रृंखला को परिवर्तन करने का निर्णय लेती है, घिसीपिटी मशीनरी के प्रतिस्थापन का निर्णय लेती है, एक नई उत्पाद सुविधा का क्रय अथवा ग्राहकों के एक नये सेंट की अभिप्राप्ति का निर्णय। डूबत लागतें ऐसी लागतों का संदर्भ लेती हैं जो सदैव के लिए पहले ही खर्च की जा चुकी हैं तथा वसूल नहीं की जा सकती हैं। वे विगत वायदों पर आधारित होती हैं तथा संशोधित या उलटी नहीं जा सकती हैं यदि फर्म ऐसा करने की सोचती है। डूबत लागत के उदाहरण हैं विज्ञापन, शोध तथा विकास, विशेष उपकरणों तथा स्थायी सुविधाओं पर किये गये व्यय जैसे रेलवे लाईन। डूबत लागतें व्यवसाय में फर्मों के प्रवेश के प्रति एक महत्वपूर्ण बाधा है।

ऐतिहासिक लागतें तथा प्रतिस्थापन लागतें (Historical Costs and Replacement Costs)–ऐतिहासिक लागत किसी उत्पादकीय सम्पत्ति की अभिप्राप्ति पर विगत में लगाई गई लागतों का सन्दर्भ लेती है जैसे मशीनरी, भवन, आदि। प्रतिस्थापन लागत ऐसा मौद्रिक व्यय है जिसे किसी पुरानी सम्पत्ति के प्रतिस्थापन हेतु लगाया जाना होता है। मूल्यों में अस्थिरता इन दोनों लागतों को भिन्न बना देती हैं। अन्य बातें समान रहने पर, मूल्य में एक वृद्धि प्रतिस्थापन लागतों को ऐतिहासिक लागत से अधिक बना देगी।

निजी लागतें तथा सामाजिक लागतें (Private Costs and Social Costs)–निजी लागतें, वास्तव में लगाई गई लागतें हैं तथा जिनका फर्मों द्वारा प्रावधान किया गया तथा ये अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी लागतें हैं। वे सामान्यत: व्यावसायिक निर्णयों में ली जाती हैं क्योंकि वे कुल लागत का भाग बनती हैं तथा फर्म द्वारा अन्त:कृत कर ली जाती हैं। दूसरी ओर सामाजिक लागत किसी व्यावसायिक गतिविधि के कारण समाज द्वारा वहन की गई कुल लागतों का सन्दर्भ लेती है तथा निजी लागत तथा बाहरी लागत का समावेश करती है। यह संसाधनों की लागत का समावेश करती है जिसके लिए फर्म को कोई मूल्य चुकाने की आवश्यकता नहीं है जैसे वायुमण्डल, नदियाँ, रोडवेज, आदि तथा वायु, जल एवं वातावरणीय प्रदूषण के रूप में निर्मित गैर-उपादेयता के रूप में लागत।

स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतें (Fixed and variable costs)–स्थिर अथवा स्थायी लागतें उत्पादन का प्रत्यक्ष घटक नहीं होती हैं इसलिए ये उत्पादन के साथ परिवर्तित नहीं होती हैं। ये लागतें एक खर्च का एक निश्चित कोष चाहती हैं चाहे उत्पादन की मात्रा कोई भी क्यों न हो जैसे लगान, सम्पत्ति कर, ऋणों पर ब्याज, घिसावट व्यय, समय के फलन के रूप में न कि उत्पादन के फलन के रूप में। यद्यपि ये लागतें भी संयंत्र के आकार के साथ बदलती हैं और उत्पादन क्षमता का फलन होती हैं। इसलिए स्थिर लागतें उत्पादन की मात्रा के साथ परिवर्तित नहीं होती हैं अपितु क्षमता के स्तर की सीमा से जुड़ी होती हैं।

स्थिर लागतों को समाप्त करना संभव नहीं है जब तक कि उत्पादन कार्य चलता रहता है। ये लागतें स्थिर होती हैं ये तभी समाप्त होती हैं जबकि क्रियाकलाप पूर्णत: बन्द हो जाते हैं। हम इन्हें न बचने योग्य तथा अनियंत्रित-लागतें भी कह सकते हैं। किन्तु कुछ ऐसी लागतें भी होती हैं जो क्रियाकलापों के स्थागित किये जाने के पश्चात् भी चालू रहती हैं, उदाहरण के लिए, पुरानी मशीनों का संग्रहण जिन्हें बाजार में बेचना संभव नहीं होता है। कुछ स्थिर लागतें जैसे विज्ञापन व्यय इत्यादि नियोजित स्थिर लागतें समझी जाती हैं अथवा विवेकशील व्यय माने जाते हैं, क्योंकि वे प्रबन्धकर्त्ताओं की निर्णय लेने की इच्छा पर निर्भर होते हैं। अर्थात् इन सेवाओं पर व्यय करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए।

परिवर्तनशील लागतें वे लागतें होती हैं जो उत्पादन की मात्रा का फलन होती हैं तथा उत्पादन अवधि से जुड़ी होती हैं। यह लागत संचय के समान होती हैं जो कि उत्पादन की मात्रा के साथ-साथ प्रयुक्त होती है। परिवर्तनशील लागतें कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप में तथा कभी-कभी आनुपातिक रूप से उत्पादन के साथ बदलती जाती हैं। उत्पादन की कुछ निश्चित सीमाओं में वे अनुपात से कम अथवा अधिक बदल जाती हैं।

2.1 लागत फलन (COST FUNCTION)

लागत फलन से एक उत्पाद की लागत तथा लागतों के विभिन्न निर्धारक तत्वों के बीच गणितीय सम्बन्ध का सन्दर्भ लिया जाता है। लागत फलन में, आश्रित चर होता है इकाई लागत या कुल लागत तथा स्वतंत्र चर होते हैं एक घटक का मूल्य,

© The Institute of Chartered Accountants of India

उत्पादन का आकार या कोई अन्य सम्बद्ध सूत्र जिसका लागत पर प्रभाव पड़ता है जैसे प्रौद्योगिकी, क्षमता उपयोग का स्तर, कार्यक्षमता तथा विचाराधीन समय अवधि। यह लागतों तथा उत्पादन के बीच सम्बन्ध की अभिव्यक्ति करता है। लागत कार्यों को फर्मों के वास्तविक लागत आँकड़ों से व्युत्पन्न किया जाता है तथा लागत वक्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। लागत वक्रों का आकार लागत कार्य पर निर्भर करता है। लागत कार्य दो प्रकार के होते हैं। वे अल्पकालीन लागत कार्य तथा दीर्घकालीन लागत कार्य होते हैं।

2.2 अल्पकालीन कुल लागतें (SHORT RUN TOTAL COSTS)

कुल, स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतें–कुछ साधन ऐसे होते हैं जो उत्पादन के स्तर में परिवर्तन होने पर समायोजित किये जा सकते हैं। जैसे एक फर्म आसानी से श्रमिकों को काम पर लगा सकती है जब उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करनी होती है। इसी प्रकार जब उसे उत्पादन में विस्तार करना हो तो कच्चे माल अधिक मात्रा में खरीद सकती है। ऐसे साधन जिनकी मात्रा में उत्पादन स्तर में परिवर्तन के साथ आसानी से वृद्धि की जा सकती है, उन्हें परिवर्तनशील साधन कहा जाता है। इसके विपरीत ऐसे भी कुछ साधन होते हैं जैसे भवन, पूँजीगत उपकरण अथवा शीर्ष प्रबन्धक टीम जिनको आसानी से परिवर्तन करना संभव नहीं होता। तुलनात्मक रूप से इनमें परिवर्तन करने के लिए दीर्घावधि की आवश्यकता पड़ती है। नयी मशीनरी स्थापित करने में समय लगता है। इसी प्रकार नये भवन के निर्माण में भी समय लगता है। ऐसे साधन जिनको आसानी से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है और जिनके समायोजन के लिए लम्बे समय की आवश्यकता पड़ती है, वे स्थिर साधन कहलाते हैं।

स्थिर एवं परिवर्तनशील साधनों में अन्तर करने के समान ही हम समय को भी अल्पकाल तथा दीर्घकाल दो भागों में बांटते हैं। अल्पकाल वह अवधि होती है जिसमें उत्पादन में वृद्धि अथवा कमी केवल परिवर्तनशील साधनों जैसे श्रम, कच्चा माल इत्यादि की मात्रा में परिवर्तन करके, की जा सकती है। यदि फर्म अल्पकाल में उत्पादन की मात्रा बढ़ाना चाहती है तो वह केवल परिवर्तनशील साधनों की सहायता से ऐसा कर सकती है अर्थात् अधिक श्रम का उपयोग करके अथवा अधिक कच्चा माल खरीदकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार अल्पकाल वह समय अवधि होती है जिसमें केवल परिवर्तनशील साधनों में परिवर्तन किया जा सकता है जबकि स्थिर साधनों की मात्रा यथावत रहती हैं। इसके विपरीत दीर्घकाल समय की वह अवधि होती है जिसमें सभी साधनों की मात्रा परिवर्तित की जा सकती हैं इस प्रकार दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील हो जाते हैं।

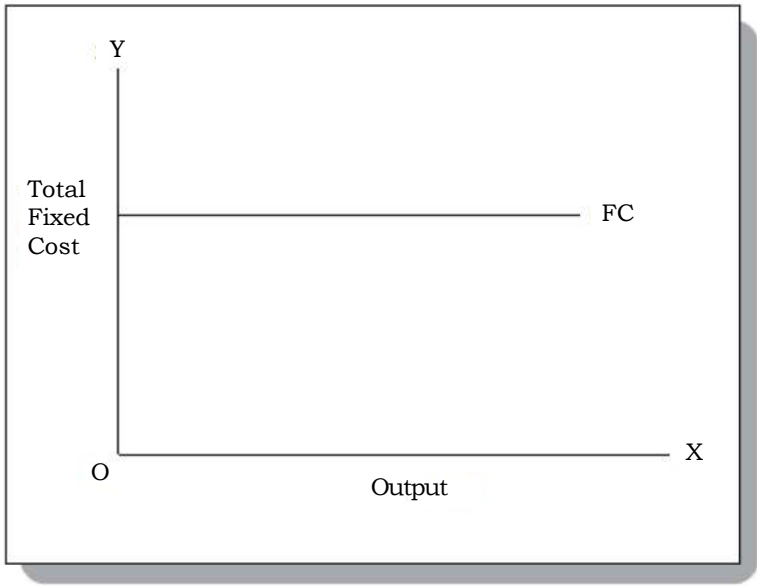

चित्र 5 : पूर्णतः स्थिर लागत

© The Institute of Chartered Accountants of India

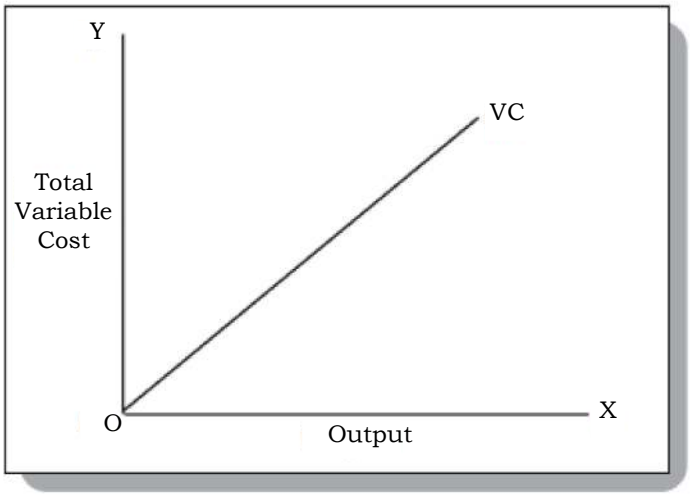

चित्र 6 : पूर्णतः परिवर्तनशील लागत

इस प्रकार हम पाते हैं कि स्थिर लागतें वे लागतें होती हैं जो कि उत्पादन से स्वतंत्र होती हैं अर्थात् उत्पादन में परिवर्तन होने पर वे परिवर्तित नहीं होती हैं। ये लागतें "स्थिर राशि" वाली होती हैं जो कि अल्पकाल में फर्म को व्यय करनी होती हैं, उत्पादन चाहे थोड़ा हो अथवा अधिक हो। यदि अल्पकाल में, कुछ समय के लिए फर्म बन्द भी हो जाती हो किन्तु व्यवसाय में बनी रहती हो, तो इन लागतों को उस फर्म को झेलना होता है। स्थिर लागतों में संविदा लगान, रख-रखाव की लागत, सम्पत्ति लगायी गयी पूँजी पर ब्याज, प्रबन्धक का वेतन, चौकीदार की मजदूरी इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। स्थिर लागत वक्र को चित्र 5 में दिखाया गया है।

दूसरी ओर, परिवर्तनशील लागतें वे होती हैं जो उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन के साथ बदल जाती हैं। इनमें जो श्रमिक काम करते हैं, उनकी मजदूरी, कच्चे माल का मूल्य, ईंधन और शक्ति, यातायात लागत इत्यादि शामिल हैं। यदि फर्म अल्पकाल के लिए बन्द हो जाए तब वह परिवर्तनशील साधनों का उपयोग बन्द कर सकती है, इसलिये तब इन पर परिवर्तनशील लागतों के व्यय करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है।

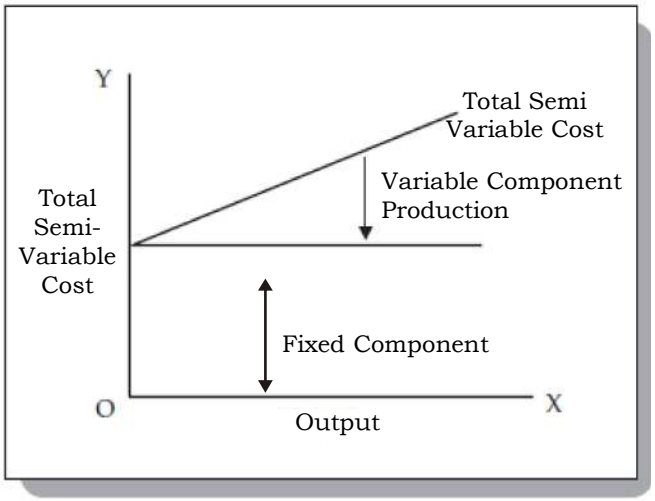

चित्र 7 : अर्द्ध परिवर्तनशील लागत

कुछ ऐसी लागतें होती हैं जो न तो पूरी तरह से परिवर्तनीय होती हैं और न ही उत्पादन के आकार में परिवर्तनों के सम्बन्ध में पूर्णतः स्थिर। उनको अर्द्ध परिवर्तनीय लागतों के रूप में जाना जाता है। उदाहरण–बिजली के प्रभार एक स्थायी प्रभार तथा उपभोग पर आधारित प्रभार दोनों का ही समावेश करते हैं।

© The Institute of Chartered Accountants of India

कुछ लागतें ऐसी होती हैं जो एक सीढ़ीनुमा तरीके से बढ़ सकती हैं अर्थात वे उत्पादन के एक निर्दिष्ट दायरे में स्थिर बनी रहती हैं, लेकिन जब उत्पादन एक निर्दिष्ट सीमा से आगे जाता है तो यह अचानक ही एक नये ऊँचे स्तर तक उछल जाती हैं। उदाहरण के लिए, यदि उत्पादन एक निश्चित सीमा से अधिक किया जाता है तो फोरमैन का स्थिर वेतन अचानक उछाल दिखायेगा और एक अन्य फोरमैन को नियुक्त किया जाता है।

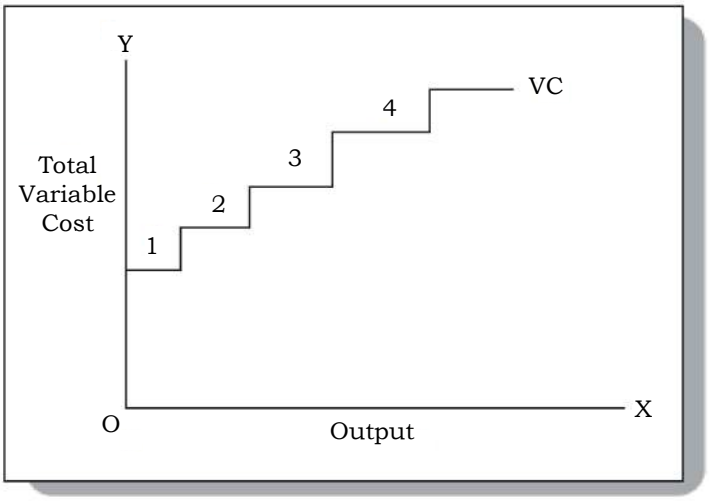

चित्र 8 : सीढ़ीनुमा परिवर्तनशील लागत

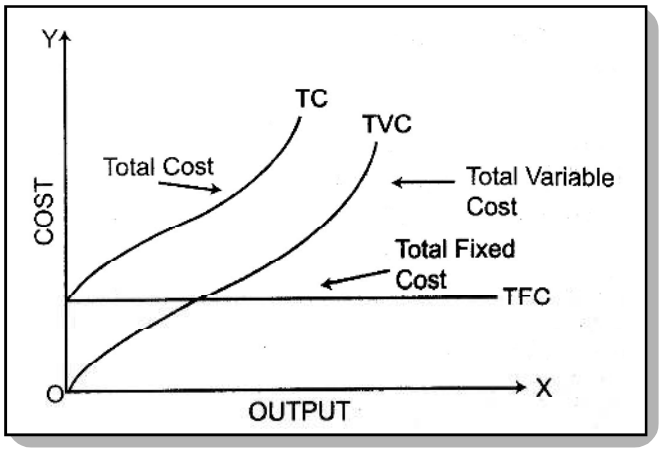

चित्र 9 : अल्पकालीन कुल लागत वक्र

किसी व्यवसाय की कुल लागत को उस वास्तविक लागत के रूप में परिभाषित किया जाता है जो उत्पादन की एक दी गई मात्रा के उत्पादन के लिए लगाई जानी चाहिये। अल्पकालीन कुल लागत दो महत्वपूर्ण तत्वों से बनी है **यथा** कुल स्थिर लागत तथा कुल परिवर्तनीय लागत। संकेत रूप में $TC = TFC + TVC$ हम कुल लागत, कुल परिवर्तनशील लागत, और कुल स्थिर लागत को चित्र द्वारा भी व्यक्त कर सकते हैं।

उपरोक्त चित्र में, कुल स्थिर लागत वक्र (TFC) X-अक्ष के समानान्तर क्षैतिज सरल सीधी रेखा होती है क्योंकि TFC उत्पादन के सम्पूर्ण दायरे के लिए स्थिर बना रहता है। यह वक्र Y-अक्ष पर एक बिन्दु से प्रारम्भ होता है जिसका अर्थ है कि स्थिर लागतें कम की जायेंगी भले ही उत्पादन शून्य हो। दूसरी ओर, कुल परिवर्तनीय लागत वक्र ऊपर की तरफ उठता है यह स्पष्ट करते हुए कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है कुल परिवर्तनीय लागत बढ़ती है। कुल परिवर्तन लागत वक्र मूल बिन्दु (origin) से प्रारम्भ होती है क्योंकि परिवर्तनीय लागतें शून्य होती हैं जब उत्पादन शून्य हो। उल्लेखनीय है कि कुल परिवर्तनीय

© The Institute of Chartered Accountants of India

लागत प्रारम्भ में एक घटती दर से बढ़ती हैं तथा फिर बढ़ती दर से उत्पादन में वृद्धियों के साथ-साथ। TVC में परिवर्तन का यह पैटर्न परिवर्तनीय इनपुट्स के प्रति बढ़ती प्रत्यायों तथा घटती प्रत्यायों के नियम के क्रियाशील होने के कारण उत्पन्न होता है। घटती प्रत्यायों के क्रियाशील होने के कारण, जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है परिवर्तनीय इनपुट्स की अपेक्षाकृत अधिक मात्राओं की उत्पादन की उस मात्रा के उत्पादन हेतु आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप, परिवर्तनीय लागत वक्र उत्पादन के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तरों पर भारी होती जाती है। कुल लागत वक्र को कुल स्थिर लागत वक्र तथा कुल परिवर्तनीय लागत वक्र के लम्बवत् योग द्वारा प्राप्त की जा चुकी है। TC तथा TVC के ढाल उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर वही रहते हैं तथा प्रत्येक बिन्दु पर दोनों वक्रों की लम्बवत् दूरी कुल स्थिर लागतों के बराबर होती हैं। इसकी स्थिति स्थिर लागतों की राशि की अभिव्यक्ति करती है तथा इसके ढाल (slopes) परिवर्तनीय लागतों को बताते हैं।

अल्पकालीन औसत लागत (Short run average cost)

औसत स्थिर लागत [Average Fixed Cost (AFC)]–औसत स्थिर लागत कुल स्थिर लागत में उत्पादन की मात्रा का भाग देने से प्राप्त होती है, अर्थात् $AFC = \frac{TFC}{Q}$ यहाँ पर Q कुल उत्पादित इकाई है। इस प्रकार औसत स्थिर लागत उत्पादन की प्रति इकाई की स्थिर लागत हैं। उदाहरण के लिए, एक फर्म कुल 2,000 रु. की स्थिर लागत के आधार पर उत्पादन का कार्य चला रही है जब उत्पादन 100 इकाई होता है औसत स्थिर लागत 20 रु. होगी। अब यदि उत्पादन बढ़कर 200 इकाइयाँ हो जाता है तो औसत स्थिर लागत 10 रु. हो जायेगी। चूंकि कुल स्थिर लागत एक अपरिवर्तनीय राशि है औसत स्थिर लागत उत्पादन वृद्धि के साथ तेजी से गिरती है। इसलिए यदि हम औसत स्थिर लागत वक्र खींचें तो यह अपनी पूरी लम्बाई तक नीचे की ओर ढलुवां होगी। (चित्र 10)

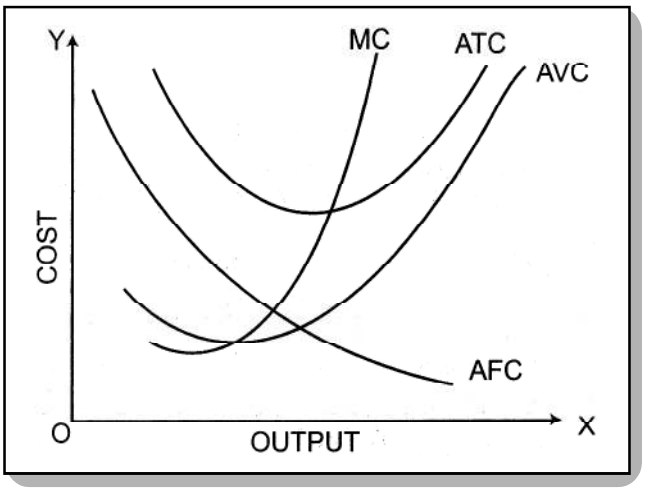

चित्र 10 : अल्पकालीन औसत एवं सीमांत लागत वक्र

औसत परिवर्तनशील लागत [Average Variable Cost (AVC)]–औसत परिवर्तनशील लागत कुल परिवर्तनशील लागत में उत्पादन की इकाइयों के भाग देने से प्राप्त होती है, अर्थात् $AVC = \frac{TVC}{Q}$ यहाँ पर Q कुल उत्पादित इकाई है। इसी प्रकार औसत परिवर्तनशील लागत प्रति इकाई उत्पादन की परिवर्तनशील लागत है। उत्पादन की प्रारम्भिक अवस्था में औसत पवित्रनशील लागत घटती जाती है एवं यह उस समय तक घटती जाती है जब तक कि फर्म न्यूनतम लागत बिन्दु पर न पहुँच जाए। किन्तु उत्पादन के सामान्य स्तर के पश्चात् औसत परिवर्तनशील लागत तेजी से बढ़ने लगेगी क्योंकि प्रतिफल के घटते नियम का प्रभाव होने लगता है। (वृद्धिमान प्रतिफल तथा ह्रासमान प्रतिफल का विवेचन पहले किया जा चुका है) यदि हम औसत परिवर्तनशील लागत वक्र खींचें तो पहले यह गिरती है, फिर न्यूनतम लागत बिन्दु तक पहुँचती है और फिर बढ़ने लगती है। (चित्र 10)

औसत कुल लागत [Average Total Cost (ATC)]–औसत कुल लागत औसत परिवर्तनशील लागत और औसत स्थिर लागत के योग से प्राप्त होती है, $ATC = AFC + AVC$ यह लागत कुल लागत में उत्पादन की इकाईयों का भाग देने पर ज्ञात की जा सकती है। एक निश्चित बिन्दु पर पहुंचने तक औसत कुल लागत निरन्तर कम होती जाती है तथा उसके पश्चात् बढ़ना आरम्भ हो जाती है। इस बिन्दु को आदर्श उत्पादन क्षमता बिन्दु कहा जाता है। औसत कुल लागत वक्र का व्यवहार औसत परिवर्तनशील लागत वक्र एवं औसत स्थिर लागत वक्र के व्यवहार पर निर्भर करता है। प्रारंभ में दोनों *AVC* और *AFC* वक्र गिरते हैं अत: *ATC* वक्र भी तेजी से गिरता है। जब *AVC* वक्र बढ़ना आरंभ हो जाता परन्तु *AFC* वक्र तेजी से गिर रहा होता है, तो *ATC* वक्र का गिरना चालू रहता है। यह इसलिए होता है क्योंकि इस अवस्था में *AFC* वक्र गिरने की मात्रा *AVC* वक्र बढ़ने की मात्रा से अधिक होती है किन्तु जब उत्पादन की मात्रा और भी अधिक होती है तब *AVC* में तेज वृद्धि होती

© The Institute of Chartered Accountants of India

है जो कि *AFC* के गिरने से होने वाली क्षतिपूर्ति मात्रा से अधिक होती है। इसलिए *ATC* वक्र पहले गिरता है, अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुँचती है और उसके पश्चात् बढ़ती है। इस प्रकार औसत कुल लागत वक्र "U" यू-अक्षर की आकृति लिए होता है। (चित्र 10)

सीमान्त लागत (Marginal Costs)–सीमान्त लागत कुल लागत में उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई को जोड़ने से उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में, यह 't' इकाइयों के उत्पादन की लागत है बजाय $t - 1$ इकाइयों के जहाँ t कोई निश्चित अंक होता है। उदाहरण के लिए, यदि हम 5 इकाइयाँ 200 रु. की लागत पर उत्पादन करते हैं और अब मान लीजिए 6 इकाइयों का उत्पादन किया जाता है और कुल लागत 250 रुपये होती है इसलिए सीमान्त लागत 250 रु. – 200 रु. = 50 रुपये। सीमान्त लागत 24 रुपये होगी अगर 320 रुपये की लागत पर 10 इकाई बनाई जाती है [(320 – 200)/(10 – 5)]। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सीमान्त लागत स्थिर लागत से स्वतंत्र होती हैं क्योंकि स्थिर लागत उत्पादन में परिवर्तन होने पर परिवर्तित नहीं होती है। यह परिवर्तनशील लागत ही होती है जो कि उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन के साथ बदलती जाती है। इसलिए सीमान्त लागत वास्तव में परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन होने के कारण ही अस्तित्व में आती है। सांकेतिक रूप से सीमान्त लागत को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

ΔTC = Change in Total Cost

ΔQ = Change in Output

or

$$MC_n = TC_n - TC_{n-1}$$

प्रारंभ में जब उत्पादन बढ़ता है तो सीमान्त लागत गिरती है। यह एक निश्चित उत्पादन के पश्चात् बढ़नी प्रारंभ होती है। यह परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के प्रभाव के कारण होता है। यह तथ्य कि सीमान्त उत्पादन पहले बढ़ता है तथा अधिकतम बिन्दु तक पहुँचता है तत्पश्चात् गिरता है जो यह सुनिश्चित करता है कि एक फर्म का सीमान्त लागत वक्र पहले गिरता है, तत्पश्चात् अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुँचता है और फिर बढ़ता है। दूसरे शब्दों में, एक फर्म का सीमान्त लागत वक्र 'U' अक्षर के आकार का होता है (देखिये चित्र 10)

इन लागतों का व्यवहार तालिका 2 में भी दिखाया गया है।

तालिका 2 : विभिन्न लागतें

उत्पादन की इकाईयाँ	कुल स्थायी लागत	कुल परिवर्तनीय लागत	कुल लागत	औसत स्थायी लागत	औसत परि. लागत	औसत कुल लागत	सीमान्त लागत
0	1000	0	1000	—	—	—	—
1	1000	50	1050	1000.00	50.00	1050.00	50
2	1000	90	1090	500.00	45.00	545.00	40
3	1000	140	1140	333.33	46.67	380.00	50
4	1000	196	1196	250.00	49.00	299.00	56
5	1000	255	1255	200.00	51.00	251.00	59
6	1000	325	1325	166.67	54.17	221.83	70
7	1000	400	1400	142.86	57.14	200.00	75
8	1000	480	1480	125.00	60.00	185.00	80
9	1000	570	1570	111.11	63.33	174.44	90
10	1000	670	1670	100.00	67.00	167.00	100
11	1000	780	1780	90.91	70.91	161.82	110
12	1000	1080	2080	83.33	90.00	173.33	300

© The Institute of Chartered Accountants of India

ऊपर दी गई तालिका बताती है कि :

(*i*) स्थायी लागतें एक निर्दिष्ट विस्तार तक उत्पादन में वृद्धि से बदलती नहीं हैं। अत: औसत स्थायी लागत उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ नीचे आती है।

(*ii*) परिवर्तनीय लागत बढ़ती है लेकिन अनिवार्यत: उसी अनुपात में नहीं जैसे कि उत्पादन में वृद्धि होती है। उपरोक्त स्थिति में, औसत परिवर्तनीय लागत धीरे-धीरे 4 इकाई तक नीचे आ जाती है तथा उसके बाद बढ़ने लगती है।

(*iii*) सीमान्त लागत अतिरिक्त उत्पादित इकाइयों से विभाजित अतिरिक्त लागत है, यह भी पहले गिरती है उसके बाद बढ़ती है।

औसत लागत तथा सीमान्त लागत के बीच सम्बन्ध (Relationship between average cost and marginal cost)—सीमान्त लागत तथा औसत लागत के बीच सम्बन्ध ठीक वैसे ही होता है जैसे अन्य किसी सीमान्त औसत मात्राओं के बीच होता है। दोनों लागतों के बीच सम्बन्ध को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

(1) जब औसत लागत उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप गिरती है, सीमान्त लागत औसत लागत की अपेक्षा कम होती है।

(2) जब उत्पादन में वृद्धि के फलस्वरूप औसत लागत बढ़ती है तो सीमान्त लागत औसत लागत की अपेक्षा अधिक होती है।

(3) जब औसत लागत न्यूनतम होती है तो सीमान्त लागत औसत लागत के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में, सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र को अपने न्यूनतम बिन्दु पर काटती है (अर्थात् अनुकूलतम बिन्दु)।

चित्र 10 उपरोक्त सम्बन्धों की पुष्टि करते हैं।

2.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LONG RUN AVERAGE COST CURVES)

जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि दीर्घकाल वह समय की अवधि है जिसमें एक फर्म अपने उत्पादन की सभी आगतों में परिवर्तन कर सकती है जबकि अल्पकाल में, कुल आगत स्थिर रहती है, और कुछ साधन परिवर्तनशील होते हैं। दूसरे शब्दों में, अल्पकाल में फर्म अपने संयंत्र से बँधी हुई रहती है दीर्घकाल में फर्म एक संयंत्र को छोड़कर दूसरे संयंत्र को स्थापित कर सकती है। यह एक बड़ा संयंत्र बनवा सकती है, यदि उसे अपना उत्पादन बढ़ाना होता है और छोटा संयंत्र अपना सकती है यदि उसे अपना उत्पादन घटाना होता है। उत्पादन की दीर्घकालीन लागत उत्पादन के दिये हुए स्तर की न्यूनतम संभावित लागत होती है जब सभी साधन अलग-अलग परिवर्तनशील होते हैं। दीर्घकालीन लागत वक्र उत्पादन और उत्पादन की दीर्घकालीन लागत का फलनात्मक सम्बन्ध प्रस्तुत करता है।

इस बात को समझने के लिए कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र किस प्रकार ज्ञात किया जाता है, हम तीन अल्पकालीन औसत लागत वक्रों का अध्ययन करते हैं जैसे कि चित्र 11 में दर्शाया गया है। ये अल्पकालीन लागत वक्र (SACs) संयंत्र वक्र भी कहे जाते हैं। अल्पकाल में फर्म किसी एक औसत अल्पकालीन वक्र पर उत्पादन कर सकती है, जबकि संयंत्र का आकार दिया हुआ हो। मान लीजिए कि केवल तीन संयंत्र ही तकनीकी दृष्टि से संभव हो सकते हैं। संयंत्र के आकार के दिये होने पर, फर्म अपने उत्पादन की मात्रा को अपने परिवर्तनशील आगतों में परिवर्तन करके बढ़ा सकती है अथवा कम भी कर सकती है। किन्तु दीर्घकालीन में फर्म तीन आकारों के संभावित संयंत्रों में से चुनाव करती है जैसेकि अल्पकाल औसत वक्र में दर्शाया गया है (SAC_1 SAC_2 SAC_3) दीर्घकाल में, फर्म इस बात का परीक्षण करेगी कि संयंत्रों में से किस आकार अथवा किस अल्पकालीन औसत लागत पर निश्चित मात्रा का उत्पादन करना चाहिए जिससे कि कुल लागत न्यूनतम हो सके। चित्र में यह देखा जा सकता है कि उत्पादन की *OB* मात्रा के लिए फर्म SAC_1 पर सक्रिय होगी, यद्यपि यह उत्पादन SAC_2 पर भी हो सकता था क्योंकि *OB* मात्रा के अन्तर्गत *SAC*1 पर उत्पादन SAC_2 की तुलना में कम लागत पर संभव होता है। उदाहरण के लिए, यदि SAC_1 के साथ *OA* उत्पादन स्तर तक उत्पादन किया जाता है तो इस पर AL प्रति इकाई लागत आएगी एवं यदि यह उत्पादन SAC_2 के साथ किया जाता है तो इस पर AH लागत आती है। अत: स्पष्ट है कि AH लागत AL लागत की तुलना में अधिक है। इसी प्रकार यदि फर्म एक योजनानुसार OB से अधिक मात्रा में उत्पादन करना चाहती है किन्तु OD

© The Institute of Chartered Accountants of India

से कम उत्पादन करना चाहती है, तब उसके लिये SAC1 पर उत्पादन करना लाभदायक नहीं होगा। इसके लिए फर्म को SAC_2 वक्र का उपयोग करना होगा। इसी प्रकार OD से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए फर्म को SAC_3 का उपयोग करना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि फर्म को दीर्घकाल में यह चयन करने का अधिकार रहता है कि वह किस संयंत्र पर उत्पादन करे और वह उस संयंत्र को काम में लेगी जो न्यूनतम संभव इकाई लागत पर निश्चित उत्पादन को उपलब्ध करवा सके।

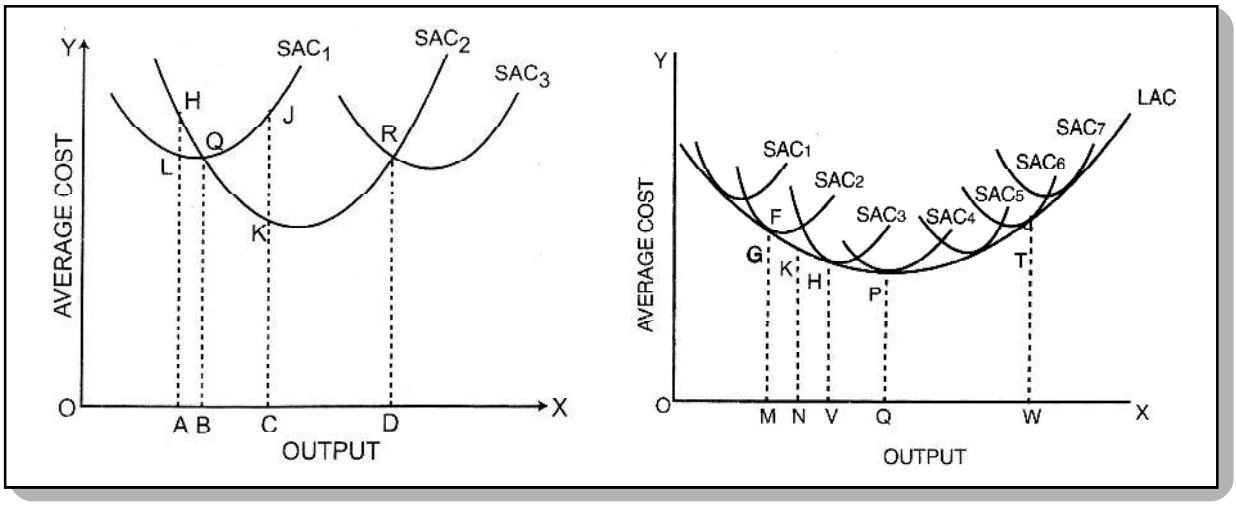

चित्र 11 : अल्पकालीन औसत लागत वक्र संयंत्र वक्र **चित्र 12 : दीर्घकालीन औसत लागत वक्र**

मान लीजिए, फर्म को यह चयन करने का अधिकार है कि वह संयंत्र को असीमित उत्पादन मात्राओं के अनुरुप परिवर्तित कर सकती है इसलिए अनन्त संख्या में संयंत्र होंगे जिनके अनुरुप अनेक औसत लागत वक्र होंगे। ऐसी स्थिति में, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र सपाट आकार का होगा, और इन सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को अपनी पूरी लम्बाई तक लपेटे हुए होगा (लिफाफे के समान आकार वाला)।

जैसा कि चित्र 12, में दिखाया गया है दीर्घकालीन औसत लागत वक्र इस प्रकार खींचा जाता है कि यह प्रत्येक अल्पकालीन औसत लागत वक्र को स्पर्श करता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का प्रत्येक बिन्दु किसी न किसी अल्पकालीन औसत लागत वक्र को स्पर्श करने वाला बिन्दु होता है। यदि कोई फर्म दीर्घकाल में कोई विशेष उत्पादन करना चाहती है तो वह दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के किसी बिन्दु का चुनाव कर सकती है जो उसके उत्पादन के अनुरुप हो और फर्म उसी के अनुरुप संयंत्र का निर्माण करेगी और अल्पकालीन औसत लागत के अनुरुप उत्पादन प्रारंभ कर देगी। जैसे चित्र में *OM* उत्पादन दिखाया गया है जिसका *LAC* वक्र पर *G* बिन्दु इस उत्पादन के अनुरूप है तथा अल्पकालीन लागत वक्र SAC_2 दीर्घकालीन लागत वक्र AC इसी बिन्दु को स्पर्श करता है। इस प्रकार यदि कोई फर्म *OM* उत्पादन करना चाहती हो तो वह फर्म SAC_2 के अनुरूप उत्पादन संयंत्र का निर्माण करवायेगी और इस वक्र पर संचालन कार्य G बिन्दु पर निश्चित करेगी। इसी प्रकार फर्म अन्य स्तर पर भी उत्पादन करेगी, और इसके अनुरूप संयंत्र का निर्माण करवायेगी जो उसकी आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त हो, जिससे उत्पादन न्यूनतम संभावित लागत पर हो सकता हो। चित्र से यह स्पष्ट होता है कि कम लागत पर अधिक उत्पादन, बड़े संयंत्र द्वारा सम्भव हो सकता है, जबकि थोड़ा उत्पादन छोटे संयंत्रों द्वारा न्यूनतम लागत पर संभव हो सकता है। उदाहरण के लिए *OM* उत्पादन करने के लिये फर्म केवल SAC_2 का उपयोग करेगी; यदि फर्म SAC_3 का उपयोगी करती है तो SAC_2 की अपेक्षा अधिक ऊंची इकाई लागत आयेगी, किन्तु अधिक बड़ा उत्पादन OV अधिकतम मितव्ययितापूर्वक बड़े संयंत्र द्वारा जो SAC_3 द्वारा होता है, किया जायेगा। यदि हम *OV* उत्पादन छोटे संयंत्र के

© The Institute of Chartered Accountants of India

माध्यम से करवाना चाहेंगे तो इकाई लागत ऊंची आयेगी। इसी प्रकार यदि हम अधिक उत्पादन छोटे संयंत्र द्वारा करना चाहेंगे तो भी लागत ऊंची आयेगी क्योंकि संयत्र की क्षमता इस दृष्टि से सीमित होगी।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि *LAC* वक्र *SAC* वक्रों के न्यूनतम बिन्दुओं को स्पर्श नहीं करता है, जब LAC वक्र गिरता है तो यह अल्पकालीन लागत वक्रों के गिरते हुए भागों को स्पर्श करता है। इस प्रकार न्यूनतम संभव इकाई लागत पर, "OQ" से कम मात्रा में उत्पादन के लिए फर्म को इसके अनुरूप संयंत्र बनाकर उसकी पूर्ण क्षमता से कम क्षमता पर काम में लेना होगा। अर्थात् इसकी न्यूनतम औसत लागत से कम उत्पादन लागत पर उत्पादन करना पड़ेगा। इसके विपरीत 'OQ' से अधिक उत्पादन करने के लिए फर्म संयंत्र तैयार करेगी और उसको क्षमता से अधिक स्तर पर उपयोग में लेगी। उत्पादन '*OQ'* ही अनुकूलतम उत्पादन बिन्दु है। क्योंकि 'OQ' उत्पादन *LAC* वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर किया जाता है और *SAC* के अनुरूप है जो यहाँ SAC_4 है। अन्य संयत्र या तो अपने पूर्ण क्षमता से कम स्तर पर काम में लिए जाते हैं यदि क्षमता से अधिक स्तर पर उपयोग किया जाता है। सिर्फ SAC_4 ही अपने न्यूनतम बिन्दु पर क्रियाशील होती है।

दीर्घकालीन औसत वक्र प्राय: नियोजन वक्र के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि फर्म किसी भी स्तर पर उत्पादन करने की योजना बना सकती है दीर्घकालीन वक्र पर उसके अनुरूप संयंत्र का चुनाव करती है जो कि उसके उत्पादन के लिए उपयुक्त होता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र फर्म के लिये संयंत्र के चुनाव में सहायता प्रदान करता है जिसके द्वारा एक निश्चित उत्पादन को न्यूनतम संभव लागत पर कर पाना संभव होता है।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का आकार *'U'* आकृति वाला होने का स्पष्टीकरण (Explanation of the "U" shape of the long run average cost curve)–जैसाकि चित्र में देखने से स्पष्ट है कि *LAC* वक्र 'U' के आकार का है। *LAC* वक्र का यह आकार पैमाने के प्रतिफलों पर निर्भर करता है जैसे पहले विवेचन किया जा चुका है जैसे ही एक फर्म का विस्तार होता है पैमाने के प्रतिफलों में वृद्धि होती है। फिर कुछ सीमा तक पैमाने के स्थिर प्रतिफल रहते हैं उसके पश्चात् अन्त में पैमाने के प्रतिफल गिरने लगते हैं। ठीक इसी प्रकार *LAC* वक्र पहले गिरता है, फिर स्थिर रहता है और अन्त में बढ़ने लगता है। पैमाने के वृद्धि प्रतिफल दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के गिरने के कारण होते हैं तथा पैमाने के गिरते हुए प्रतिफल के परिणामस्वरुप दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अन्त में बढ़ने लगता है। गिरती हुई दीर्घकालीन औसत लागत एवं बढ़ती हुई पैमाने की मितव्ययिताएँ पैमाने की आंतरिक एवं बाहरी बचतों के कारण उत्पन्न होती है तथा बढ़ती हुई दीर्घकालीन औसत लागत तथा पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल पैमाने की आन्तरिक एवं बाहरी हानियों के कारण उत्पन्न होते हैं (पैमाने की मितव्ययताओं का आगे किया जायेगा)।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र प्रारम्भ में उत्पादन में वृद्धि के साथ बढ़ता है तथा एक निर्दिष्ट बिन्दु के बाद यह नौका के आकार को बनाता हुआ बढ़ता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) को फर्म का नियोजन वक्र भी कहा जाता है क्योंकि यह उत्पादन के निर्धारित स्तर पर योग्य संयंत्र के चयन में सहायता करता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को Envelope वक्र भी कहा जाता है क्योंकि यह नीचे से अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के परिवार का समर्थन करता है।

उपरोक्त चित्र जो दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को दिखा रहा है परम्परागत आर्थिक समीक्षा के आधार पर निकाला जाता है। यह मोटे आकार का U-shaped हो जाता है। इस प्रकार का वक्र केवल तभी विद्यमान हो सकता है जब प्रौद्योगिकी की स्थिति सतत बनी रहती है। लेकिन अनुभवजन्य साक्ष्य बताते हैं कि आधुनिक फर्में उत्पादन की एक महत्वपूर्ण मात्रा तक L-shaped लागत वक्र का सामना करती है।

L-shaped दीर्घकालीन लागत वक्र यह दर्शाता है कि प्रारम्भ में जब संयंत्र के आकार में वृद्धि के कारण (संबद्ध परिवर्तनीय कारक), के कारण उत्पादन में वृद्धि होती है, तब पैमाने की मितव्ययताओं के कारण प्रति इकाई लागत तेजी से गिरती है। पर्याप्त बड़े पैमाने पर उत्पादन के बावजूद भी दीर्घकालीन औसत लागत वक्र नहीं बढ़ता क्योंकि वह पैमाने की बचतों का निरन्तर लाभ उठाता है।

© The Institute of Chartered Accountants of India

2.4 पैमाने की मितव्ययिताएं तथा हानियाँ (ECONOMIES AND DISECONOMIES OF SCALE)

उत्पादन का पैमाना (The Scale of Production)

आधुनिक औद्योगिक जगत की बड़े पैमाने पर उत्पादन करना एक महत्वपूर्ण विशेषता है। जिसके परिणामस्वरूप व्यावसायिक उपक्रमों का आकार काफी बढ़ गया है। बड़े पैमाने पर उत्पादन अनेक लाभों की व्यवस्था करता है जो उत्पादन लागत कम करने में मदद करते हैं। महामात्रा उत्पादन से उत्पन्न मितव्ययताएँ दो श्रेणियों में वर्गीकृत की जा सकती हैं **यथा** आन्तरिक मितव्ययताएँ तथा बाहरी मितव्ययताएँ। आन्तरिक मितव्ययताएँ उत्पादन की वे मितव्ययताएँ हैं जो फर्म को प्राप्त होती हैं जब वह अपना उत्पादन बढ़ाती हैं ताकि उत्पादन लागत विचारणीय तौर पर कम हो सके तथा फर्म को एक अच्छी स्थिति में रखा जा सके जिससे वह कार्यक्षम रूप से बाजार में प्रतिस्पर्द्धा कर सके। मितव्ययताएँ उपक्रमी की कार्यक्षमता या उसकी प्रबन्धकीय दक्षता या प्रयुक्त मशीनरी के प्रकार या अपनाई गई विपणन रणनीति के सम्बन्ध में विविध घटकों के कारण ही पूरी तरह से उत्पन्न होती हैं। ये मितव्ययताएँ फर्म के भीतर उत्पन्न होती हैं तथा केवल फर्म को ही लाभान्वित करती हैं। दूसरी ओर, उद्योग के विस्तार के परिणामस्वरूप, बाहरी मितव्ययताओं से उद्योग के प्रत्येक सदस्य फर्म को लाभ होता है।

आन्तरिक मितव्ययिताएँ तथा हानियाँ (Internal Economies and Diseconomies) हमने देखा कि पैमाने के प्रतिफल प्रथम चरणों पर बढ़ते हैं तथा एक समय तक स्थिर रहने के पश्चात् वे गिरते हैं। प्रश्न उठता है कि क्यों हम पैमाने पर बढ़ती हुई प्रत्याय पाते हैं जिसके कारण लागत गिरती है और क्यों एक निर्दिष्ट बिन्दु के पश्चात् हम घटती हुई प्रत्याय पाते हैं जिसके कारण लागत बढ़ती है। उत्तर यह है कि प्रारम्भ में एक फर्म पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताएँ प्राप्त करती हैं तथा एक सीमा के बाद वह पैमाने की आन्तरिक हानियों की शिकार हो जाती है। आन्तरिक मितव्ययिताएं तथा हानियाँ निम्न मुख्य प्रकार की हैं :

(*i*) **तकनीकी मितव्ययिताऐं तथा हानियाँ** (Technical economies and diseconomies)—बड़े पैमाने पर उत्पादन तकनीकी बचतों से जुड़ा है। ज्यों-ज्यों फर्म उत्पादन के अपने पैमाने को बढ़ाती है उतना ही सभी साधनों को और अधिक विशिष्टीकृत तथा प्रभावी प्रयोग करना संभव हो पाता है, विशेष रूप से पूँजीगत उपकरण तथा मशीनें। उत्पादन के उच्च स्तरों तक उत्पादन हेतु सामान्यत: अधिक कार्यक्षेत्र मशीनें उपलब्ध होती हैं जो जब बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए लगाई जाती है तो प्रति इकाई उत्पादन लागत कम आती है। ऐसा पूँजीगत उपकरणों की अविभाजनीयता के कारण होता है। यदि पूँजीगत उपकरण पूरी तरह विभाज्य होते तो उनको अपेक्षित मात्रा में खरीदा या प्राप्त किया जाता और बड़े पैमाने पर उत्पादन के लाभों को लेते हुए किसी वस्तु का छोटे से छोटा उत्पादन संभव होता। दूसरे, जब उत्पादन का पैमान बढ़ाया जाता है और श्रम तथा अन्य घटकों की मात्रा अपेक्षाकृत बड़ी होती है तो अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा में श्रम-विभाजन अथवा विशिष्टीकरण को लागू कर पाना संभव हो पाता है और परिणामस्वरूप प्रति इकाई लागत गिरती है। अनेक सम्बद्ध प्रक्रियाओं की निष्पत्ति के कारण एक बड़ी फर्म को कुछ लाभ उपलब्ध होते हैं। फर्म इनपुट आपूर्ति चरण से लगाकर अन्तिम उत्पादन चरण तक विभिन्न प्रक्रियाओं को चालू करके अन्य फर्मों पर असुविधा तथा निर्भरता से जुड़ी लागतों को कम कर सकती है।

लेकिन, एक निर्दिष्ट बिन्दु के बाहर फर्म को पैमाने की शुद्ध हानियां होने लगती हैं। ऐसा होने का कारण है कि जब फर्म इतने बड़े आकार तक पहुंचती है कि अधिक प्रभावी मशीनों के प्रयोग तथा श्रम-विभाजन की लगभग सभी सम्भावनाओं के उपयोग को स्वीकृति देने के लिए पर्याप्त रहे, तो संयंत्र के आकार में अतिरिक्त वृद्धि परिचालन की बढ़ी हुई लागत की ओर ले जायेगी जिसका कारण है प्रबन्ध की कठिनाइयाँ। जब परिचालन का पैमाना बहुत बड़ा हो जाता है तो प्रबन्ध के लिए नियंत्रण और उचित समन्वय कर पाना कठिन हो जाता है।

(*ii*) **प्रबन्धकीय मितव्ययिताएं एवं हानियां** (Managerial economies and diseconomies)—प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र में प्रबन्धकीय लागत घटाने का अध्ययन किया जाता है, जब उत्पादन बढ़ता है, तब प्रबन्ध पर श्रम-विभाजन लागू किया जा सकता है। यह सम्भव हो जाता है कि विशेषज्ञ कार्मिकों के अन्तर्गत उसके प्रबन्ध को विभिन्न विशिष्ट विभागों में विभाजित कर दिया जाये, जैसे उत्पादन प्रबन्धक, विक्रय प्रबन्धक, वित्त प्रबन्धक, आदि। यदि उत्पादन का पैमाना और आगे बढ़ता है तो प्रत्येक विभाग को और अधिक विभाजित किया जा सकता है जैसे—विक्रय को विज्ञापन निर्यात तथा ग्राहक सेवा जैसे अनुभागों में बाँटा जा सकता है।

© The Institute of Chartered Accountants of India